शब्दब्रह्म का स्वरूप

डा. इंद्र नारायण झा
व्याख्याता व्याकरण
राजकीय शास्त्री संस्कृत महा वद्यालय चेचट कोटा

सार

भारत में शब्द और अर्थ पर चन्तन की परम्परा प्राचीनकाल से अबाध गति से चलती आ रही है। शब्द और अर्थ सामान्य व्यवहार के लए सहायक तो हैं ही, शास्त्रीय परम्परा में भी उनका महत्त्व सर्वस्वीकृत है। शब्द तो अर्थ की अ भव्यक्ति का माध्यम है। शब्द अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप है। शब्द और अर्थ अन्योन्या श्रत हैं। दोनों को मलाकर ही 'सार्थक शब्द' बनता है। अर्थ के बिना शब्द निर्जीव है और शब्द के बिना अर्थ अग्राह्य या अप्रयोज्य ।

परिचय

भारतीय वद्वान शब्द को ब्रह्म अर्थात् ईश्वर का रूप कहते हैं। शब्दाद्वैतवाद के अनुसार शब्द ही ब्रह्म है। उसकी ही सत्ता है। सम्पूर्ण जगत शब्दमय है। शब्द की ही प्रेरणा से समस्त संसार गतिशील है। महती स्फोट प्र क्रया से जगत की उत्पत्ति हुई तथा उसका वनाश भी शब्द के साथ होगा। ब्रह्म की अनुभूति शब्दब्रह्म या नादब्रह्म के रूप में भी होती है जिसकी सूक्ष्म स्फुरणा हर पर सूक्ष्म अन्तरिक्ष में हो रही है।

प्राचीन मनी षयों ने सृष्टि की उत्पत्ति नाद से मानी है। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण जड़-चेतन में नाद व्याप्त है इसी कारण इसे "नादब्रह्म" भी कहते हैं।

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतवायदक्षरम् ।
ववर्तते अर्थभावेन प्र क्रया जगतोयतः॥

अर्थात् शब्द रूपी ब्रह्म अनादि, वनाश रहित और अक्षर (नष्ट न होने वाला) है तथा उसकी ववर्त प्र क्रया से ही यह जगत भा सत होता है।

ब्रह्माण्डीय चेतना एवं सशक्तता का उद्गम स्त्रोत क्या है, इसका खोज करते हुए तत्त्वदर्शी-ऋ ष इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, क यह समस्त हलचलें जिस आधार पर चलती हैं, वह शक्ति स्रोत 'शब्द' है। अ चन्त्य, अगम्य, अगोचर, परब्रह्म को जगत चेतना के साथ अपना स्वरूप निर्धारित करते हुए 'शब्द-ब्रह्म' के रूप में प्रकट होना पड़ा। सृष्टि से पूर्व यहाँ कुछ नहीं था। कुछ से सब

कुछ को उत्पन्न होने का प्रथम चरण 'शब्द-ब्रह्म' था, उसी को 'नाद-ब्रह्म' कहते हैं। उसकी परमसत्ता का आरम्भ-अवतरण इसी प्रकार होता है, उसके अस्तित्व एवं प्रभाव का परिचय प्राप्त करना सर्वप्रथम शब्द के रूप में ही सम्भव हो सका।

शब्द का आरम्भ जिस रूप में हुआ उसी स्थिति में वह अनन्तकाल तक बना रहेगा। आरम्भ शब्द 'ओ़उम्' माना गया है। इसको सं क्षप्त प्रतीक स्वरूप 'ॐ' के रूप में लखा जाता है।

संगीतरत्नाकर में नादब्रह्म की गरिमा पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है क नादब्रह्म समस्त प्रा णयों में चैतन्य और आन्नदमय है। उसकी उपासना करने से ब्रह्मा, वष्णु, महेश तीनों की सम्मि लत उपासना हो जाती है। वे तीनों नादब्रह्म के साथ बँधे हुए हैं।

अग्निपुराण के अनुसार- एक 'शब्दब्रह्म' है, दूसरा 'परब्रह्म'। शास्त्र और प्रवचन से 'शब्द ब्रह्म' तथा ववेक, मनन, चन्तन से 'परब्रह्म' की प्राप्ति होती है। इस 'परब्रह्म' को 'बिन्दु' भी कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार- 'शब्दब्रह्म' को ठीक तरह जानने वाला 'ब्रह्म-तत्त्व' को प्राप्त करता है।

श्रुति के अनुसार- 'शब्दब्रह्म' की तात्त्विक अनुभूति हो जाने से समस्त मनोरथों की पूर्ति हो जाती है।

नाद-ब्रह्म के दो भेद हैं- आहात और अनाहत। 'आहत' नाद वे होते हैं, जो कसी प्रेरणा या आघात से उत्पन्न होते हैं। वाणी के आकाश तत्त्व से टकराने अथवा कन्हीं दो वस्तुओं के टकराने वाले शब्द 'आहत' कहे जाते हैं। बिना कसी आघात के दिव्य प्रकृति के अन्तराल से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें 'अनाहत' या 'अनहद' कहते हैं। अनहद नाद का शुद्ध रूप है – 'प्रताहत नाद'। स्वच्छन्द-तन्त्र ग्रन्थ- में इन दोनों के अनेकों भेद-उपभेद बताये हैं। आहात और अनाहत नाद को आठ भागों में वभक्त कया है। घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फुट, ध्वनि, झंकार, ध्वंकृति। अनाहत की चर्चा महाशब्द के नाम से की गई है। इस शब्द को सुननें की साधना को 'सुख' कहते है। अनहद नाद एक बिना नाद की दैवी सन्देश-प्रणाली है। साधक इसे जान कर सब कुछ जान सकता है। इन शब्दों में 'ॐ' ध्वनि आत्म-कल्याण कारक और व भन्न प्रकार की स द्धयों की जननी है। इन्हें स्थूल-कर्णेन्द्रियाँ नहीं सुन पाती, वरन् ध्यान-धारणा द्वारा अन्तः चेतना में ही इनकी अनुभूति होती है।

'शब्द' को 'ब्रह्म' कहा है क्यों क ईश्वर और जीव को एक श्रृंखला में बाँधने का काम शब्द द्वारा ही होता है। सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ भी शब्द से हुआ है। पंच तत्त्वों में सबसे पहले

आकाश बना, आकाश की तन्मात्रा शब्द हैं। अन्य समस्त पदार्थों की भाँति शब्द भी दो प्रकार का है- 'सूक्ष्म' और 'स्थूल'। 'सूक्ष्म-शब्द' को ' वचार' कहते हैं और 'स्थूल-शब्द' को 'नाद'।

शब्द ब्रह्म का दूसरा रूप जो वचार-सन्देश की अपेक्षा कुछ सूक्ष्म है, वह नाद है। प्रकृति के अन्तराल में एक ध्वनि प्रतिक्षण उठती रहती है, जिसकी प्रेरणा से आघातों के द्वारा परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है और सृष्टि का समस्त क्रया-कलाप चलता है। यह प्रारम्भिक शब्द 'ॐ' है। यह 'ॐ' ध्वनि जैसे-जैसे अन्य तत्त्वों के क्षेत्र में होकर गुजरती है, वैसे ही उसकी ध्वनि में अन्तर आता है। वंशी के छिद्रों में हवा फूँकते हैं, तो उसमें एक ध्वनि उत्पन्न होती है। पर आगे छिद्रों में से जिस छिद्र में जितनी हवा निकाली जाती है, उसी के अनुसार भन्न- भन्न स्वरों की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, इसी प्रकार ॐ ध्वनि भी व भन्न तत्त्वों के सम्पर्क में आकर व वध प्रकार की स्वर-लहरियों में परि णत हो जाती है। इन स्वर लहरियों को सुनना ही नादयोग है।

शोधप्र व ध

प्रस्तुत शोधालेख में शोध की पुस्तकावलोकन व ध का अनुसरण कया गया है। प्राथ मक तथा द् वतीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग कया गया है। शोधालेख वर्णनात्मक प्रकृति का है।

वश्लेषण

शब्द और उसका महत्त्व

शब्द अर्थात् वाणी काव्यसर्जन के साथ-साथ लोकव्यवहार के सञ्चालन के नि मत्त अपरिहार्य तथा सर्वप्रधान साधन है। सृष्टि के आरम्भ से ही वाणी वचारों के वनिमय का प्रधान माध्यम रही है। शतपथ ब्राह्मण में वाणी की व्यापकता स्वीकार करते हुए उसे ब्रह्म कहा गया है- 'वाग्वै ब्रह्म' । ' ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार वाणी समुद्र है। वह क्षीण नहीं होती - 'वाग् वै समुद्रः । न वाक् क्षीयते । ' बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है क सब वेदों का वाणी ही एकमात्र मार्ग है- सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् । वाणी ही मनुष्य का एक ऐसा आभूषण है जो अन्य भूषणों के सदृश कभी घिसता नहीं । मह र्ष पतञ्ज ल का कथन है क एक भी शब्द यदि सम्यक् रीति से ज्ञात हो तथा सुप्रयुक्त हो तो वह इस लोक में व स्वर्ग में कामधुक् होता है 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति ।' व्याकरण से शुद्ध वाणी पाकर वद्वान् लोग प वत्र लगने लगते हैं-

धनञ्जय वासुदेव द् ववेदी

संस्कारवत्येव गरा मनीषी ।

कारव्यशास्त्रमर्मज्ञ आचार्य दण्डी के अनुसार वाणी के द्वारा ही लोकयात्रा का सञ्चालन होता है- वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते । " शब्द नामक ज्योति से यह समग्र संसार दैदीप्यमान है। इस ज्योति के बिना वह अन्धकाराच्छन्न हो जायेगा-

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुनत्रयम् ।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥

इस श्लोक में आचार्य ने शब्द को ज्योति कहा है। 'ज्योतिर्द्योतनात् ' - प्रकाशक तत्त्व को ज्योति कहा जाता है, अतः शब्द भी सकलव्यवहारप्रकाशकतया ज्योति कहा जा सकता है।

मैत्रायणी उपनिषद् में कहा गया है क कोई भी व्यक्ति शब्दब्रह्म में निष्णात होकर परब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है-

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् ।

शब्दब्रह्म ण निष्णातः ब्रह्मा धगच्छति ॥

वस्तुतः जो कुशल व्यक्ति व्यवहार के अवसर पर समु चत शब्दों का प्रयोग करता है वह अनन्त वजय को प्राप्त करता है और वाणी के परस्पर योग को न जानने वाला व्यक्ति अपशब्दों से दू षत हो जाता है। भर्तृहरि वाणी के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं-

केयूरा ण न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला न स्नानं न वलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः । वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

अर्थात् वाणी रूप भूषण सब भूषणों में उत्तम है, क्यों क केयूरादि भुजबन्ध, चन्द्रोज्ज्वलहार, स्नान, कुङ्कुमादि लेपन, पुष्प और सुन्दर केशादि के भूषण क्षयी होने के कारण वाणीरूप अक्षयभूषण की बराबरी कदा प नहीं कर सकते ।

सच तो यह है क शब्दों के अभाव में लोक में कसी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं है। उनसे सम्बद्ध होकर ही समस्त ज्ञान प्रतिभा सत होता है। संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो शब्दों के बिना ही हो जाता हो। ज्ञान तो शब्दों से कुछ इस प्रकार बिंधा हुआ है, जैसे धागे से म णयाँ। ज्ञान की प्रतीति शब्दानुबिद्ध होकर ही होती है।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।

अनु वद्ध मव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥

ज्ञान की शाश्वत वाग्रूपता (शब्दमय, शब्दरूप होना) यदि उच्छिन्न हो जाए तो प्रकाश भी प्रका शत नो हो । वाग्रूपता ही प्रकाश को प्रका शत करने वाली प्रत्यवम र्शनी शक्ति है-

वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवम र्शनी ॥

वाणी सभी वद्याओं, शल्पों और कलाओं की कारण है। इन वद्या - शल्पादियों के द्वारा नि र्मत या उत्पादित सभी वस्तुएं अपने - अपने स्वरूप और सत्ता में आती हैं। इन्हीं के द्वारा प्रवर्तित व्यवहार और प्र क्रया से ही ये नाना प्रकार की वस्तुएं और क्रयाकलाप सर्वत्र दिखाई देते हैं। इस सारे वस्तुभेद का कारण वाणी ही तो है-

सा सर्व वद्या शल्पानां कलानां चोपबन्धनी ।
तद्वशाद भनिष्पन्नं सर्वं वस्तु वभज्यते ॥

ब्रह्म जिस प्रकार स्वयं कूटस्थ अनादिनिधन होकर भी अपने को जगत् के रूप में प्रका शत करता है, शब्द भी उसी प्रकार ब्रह्मतुल्य कूटस्थ होकर अनेक अर्थों के रूप में अपने आपको प्रका शत करता है-

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ।
वर्ततेऽर्थभावेन प्र क्रया जगतो यतः ॥ १२

नियतिकृत नियम से रहित, अनन्यपरतन्त्र सद्य: चमत्कारकारी रसों से परिपूर्ण, त्रिगुणों से मण्डित, रीतियों से रम्य तथा अलंकारों से अलंकृत क वकर्म काव्य शब्दों और अर्थों का मञ्जुल समन्वय ही तो है। काव्य, शास्त्र एवं लोक व्यवहार सभी के लए शब्दों की अनिवार्यता है। काव्य एवं शास्त्र दोनों की सार्थकता अपने अभीष्ट के प्रकाशन में है। संसार के समग्र व्यवहार शब्दों पर ही आ श्रत हैं। हम अपने भावों को शब्दों के द्वारा ही प्रकट करते हैं तथा दूसरों के कथन का तात्पर्य भी शब्दों के द्वारा ही ग्रहण करते हैं।

भारतीय चन्तन परम्परा में 'शब्द' वस्तुतः मात्र व्याकरणशास्त्र का ही प्रधान वषय नहीं है, अ पतु वह काव्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र एवं अध्यात्म का भी एक महत्त्वपूर्ण ववेच्य वषय है। शब्द शक्ति शाली औष ध के तुल्य हैं जिनका प्रयोग मानवमात्र के द्वारा कया जाता है। वैयाकरणों ने शब्द को नित्य, अ वनाशी तथा मोक्षप्राप्ति का साधन माना है।

जिस प्रकार जल के दिखाई देने से पूर्व भी भू म में जल होता ही है और वह खनन कार्य के पश्चात् दिखाई देता है अथवा जिस प्रकार अन्धकार में पहले से ही वद्यमान घट दीप के द्वारा प्रका शत कए जाने पर उपलब्ध होता है, ठीक उसी प्रकार अतिसूक्ष्म वाक् के रूप में पहले से ही वद्यमान अन्तःस्थित नाद, कंठ, तालु आदि उच्चारण-स्थानों पर आवश्यकता के अनुसार कए गए अ भघात से वर्णत्व को प्राप्त होता हुआ शब्द कहलाता है। आचार्य आ पश ल ने इस प्र क्रया को सूत्ररूप में इस प्रकार प्रस्तुत कया है-

धनञ्जय वासुदेव द् ववेदी

आकाशवायुप्रभवः शरीरात् समुच्चरन् वक्त्रमुपैति नादः ।

स्थानान्तरेषु प्र वभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः ॥

अर्थात् आकाश तथा वायु के प्रभाव से नाद नामक वायु शरीर से मुख तक आती है। यही मुख के व भन्न स्थानों में वभक्त होकर वर्ण के रूप में बदल जाती है। इसे ही शब्द कहते हैं।

वाक्यपदीयकार का कथन है क वक्ता की इच्छा के अनुरूप प्रयत्न द्वारा अन्दर की स क्रय वायु एकत्रित होकर ऊपर की ओर भागती है। यह कंठ, तालु प्रभ थ स्थानों से टकराकर अ भघात नामक संयोग करती है। इस प्र क्रया में यह वायु शब्दरूप में बदल जाती है

लब्ध क्रयः प्रयत्नेन वक्त ुरिच्छानुवर्तिना ।

स्थानेष्व भहतो वायुः शब्दत्वं प्रतिपद्यते ॥

वाणी को अमृत के सदृश मधुरा, सुचरितार्थपदा, मताक्षरा, चरव्यवस्था पका, ईप्सितार्थपदा, लघुसन्देशपदा, सुनृता, मञ्जुला एवं गूढरूपा होना चाहिए।

अर्थ और उसका महत्त्व

अर्थ का सरल और स्पष्ट लक्षण करना चाहें तो कह सकते हैं क शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है, उसे अर्थ कहते हैं-

यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते ।

तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम् ॥

इससे स्पष्ट है क अर्थ का सामान्य लक्षण 'प्रतीति' है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द को सुनकर कुछ अर्थ समझता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति 'प्रतीति' ही उसका अर्थ होता है।

अर्थ भाव तथा कल्पना का वाहन और सत्य का स्वरूप है। अर्थ की रमणीय अ भव्यक्ति व्यञ्जना द्वारा, चमत्कारिक अ भव्यक्ति लक्षणा द्वारा और स्वाभा वक अ भव्यक्ति अ भधा द्वारा होती है। अर्थ का सम्यक् संयोजन बु द्ध तत्त्व पर, अर्थ की साकारता कल्पना तत्त्व पर और अर्थ का प्रभाव भाव तत्त्व पर निर्भर करता है।

महावैयाकरण मह र्ष पा णनि ने अर्थ के महत्त्व को स्वीकार कया है। अतः कहा है क अर्थवान् या सार्थक शब्दों को ही प्रातिपदिक कहते हैं- 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ' । १५ यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त में निर्वचन का आधार अर्थ को ही स्वीकार कया है। १६ अर्थ के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उनका मन्तव्य है क जो अर्थज्ञान के बिना वेदाध्ययन करता है वह भारवाहक पशु के तुल्य है। अर्थज्ञ का

सर्व वध कल्याण होता है । अर्थज्ञान की ज्योति से मनुष्य पापों को वनष्ट करके ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है-

स्थाणुरयं भारहारः कलाभूदधीत्य वेदं न वजानाति योऽर्थम् ।

योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञान वधूतपाप्पा ॥

वृक्ष अपने पत्र-पुष्प-फलों को धारण करने का भागी होता है, कन्तु उनके गन्ध-रस-रूप तथा स्पर्श के उपभोग सुखों से संयुक्त नहीं होता है। ऐसे ही वह पुरुष है, जिसने वेद पढ़कर उसका अर्थ नहीं जाना। जो पुरुष अर्थ को भी जानता है, केवल पाठमात्र का पढ़ने वाला नहीं है, वह सकल कल्याण को भोगता है। वह इस लोक में शष्टों का पूज्य होकर स्वर्ग जाता है जहाँ दुःख का नाममात्र भी नहीं है।

पतञ्ज ल भी अर्थ के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं क जिस शब्द के मूलपाठ की आवृत्ति अर्थ को बिना जाने की जाती है तो वह ज्ञान को प्रज्व लत नहीं करती है, जैसे अग्नि रहित शुष्क इन्धन-

यदधीतम वज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते ।

अनग्ना वव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हि चत् ॥१८

ऋग्वेद में एक मन्त्र को अर्थज्ञ को अजेय योद्धा बताया गया है। १९ यास्क ने अर्थ को वाणी का फल-फूल माना है- 'अर्थं वाचः पुष्पफलमाहा' स्पष्ट है क भाषा की सार्थकता अर्थ से ही है। अर्थ ही भाषा का सर्वस्व है।

अब प्रश्न उठता है क शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्ध है? क्या दोनों में अ वनाभाव सम्बन्ध है या एक के बिना भी दूसरे की स्थिति सम्भव है?

ये प्रश्न स्वाभा वक हैं। पुस्तक कहने से पुस्तक का ही अर्थ क्यों लया जाता है ? ले खनी का क्यों नहीं? शब्द और अर्थ ये दोनों भाषा के प्रमुख स्तम्भ हैं। वस्तुतः प्रत्येक शब्द, जो अर्थवान् है, कसी अर्थ वशेष की प्रतीति कराता है। कस शब्द से कस अर्थ की प्रतीति होगी यह संकेग्रह पर निर्भर करता है। संकेतग्रह के आठ साधन स्वीकार कए गए हैं-

शक्ति ग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।

वाक्यस्य शेषाद् ववृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सद्धपदस्य वृद्धाः ॥

अर्थात् व्याकरण, उपमान, शब्दकोश, आप्तवाक्य, व्यवहार, प्रकरण, ववृति तथा प्र सद्ध पद का सान्निध्य- ये संकेतग्रह के आठ साधन हैं।

व्याकरण शब्दों के अर्थ के ज्ञान में अत्यन्त सहायक है। उससे ही प्रकृति-प्रत्यय, शब्दरूप, समास, त द्धत, कृत, स्त्री लंग प्रत्ययों आदि का बोध होता है । उपमान का अर्थ है सादृश्य । सदृश वस्तु बताकर कसी

वस्तु का अर्थ बताया जाता है। कोशग्रन्थों से शब्दों का अर्थ ज्ञात करने में बहुत सहायता मलती है । यथार्थवक्ता को आप्त कहते हैं। वेद, शास्त्र, गुरु, माता, पता आदि आप्त में गने जाते हैं। बालक माता- पता को आप्त मानकर ही बाल्यावस्था में शब्दों का अर्थ ग्रहण करता है। व्यवहार का अ भप्राय है लोकव्यवहार । बालक से लेकर वृद्ध तक लोक व्यवहार से ही सबसे अ धक अर्थज्ञान करते हैं। संसार की सभी वस्तुओं का नाम हम लोक- व्यवहार से ही जानते हैं। प्रकरण या प्रसंग नानार्थक शब्दों के अर्थ निर्णय में सर्वोत्तम सहायक है। व्याख्या से भी अनेक शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है। प्र सद्ध या ज्ञात पदों की समीपता से अज्ञात शब्द का अर्थ ज्ञात होता है। २०

भारतीय चन्तकों ने वैदिककाल से ही शब्दार्थ के अन्दर अन्तर्निहित सौन्दर्य की परख प्रारम्भ कर दी थी और आगे चलकर तो सौन्दर्य वहीन काव्य को काव्यत्व की कोटि में परिग णत नहीं करने तक का सद्धान्त प्रस्तुत कया जाने लगा। शब्दार्थ में सौन्दर्य के पारखी वैदिक ऋ ष लक्षणा के माध्यम से कह उठता है क जिस तरह सुवासा जाया अपने पति के लए अपने को उद्घाटित कर देती है उसी प्रकार वाणी भी अन्तर्निहित सौन्दर्यभूत अर्थ को प्रकट कर देती है-

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं व सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

कन्तु जो व्यक्ति शब्दार्थ में अन्तर्निहित सौन्दर्यभाव को समझ नहीं पाता है उसके लए वही शब्दरा श उस गौ की तरह होती है जो दूध ही नहीं दे पाती है-

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्य प वाजिनेषु । अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥२२

वस्तुतः शब्द के गौरवगान का एकमात्र कारण है उसकी सार्थकता । अर्थ के वद्यमान रहने पर ही शब्द अपने लक्ष्य की पूर्ति में समर्थ होते हैं। सार्थक शब्दों से ही क्रान्तद्रष्टा क व रहस्यमयी भावना, काव्यगत आह्लाद, कान्तासम्मित उपदेश की कमनीय कल्पना तथा सर्वजन सुखाय एवं सर्वजन हिताय वषयों की अ भव्यक्ति करने में कृतकार्य होता है। काव्य शब्दों पर अवश्य अवलम्बित है, पर निरर्थक शब्दों पर नहीं। अर्थव्यञ्जना में समर्थ शब्दों में ही काव्यत्व प्रतिष्ठित होता है।

शब्द बोधक है और अर्थ बोध्य, अर्थात् शब्द से अर्थ का बोध होता है। इस प्रकार शब्द और अर्थ में बोध्य-बोधक भाव सम्बन्ध हुआ। कसी भी शब्द में उसका वाच्य अर्थ संकेतित होता है जो मूलत: शब्दशास्त्र तथा भाषाशास्त्र का ववेच्य होता है। यद्य प काव्य में भी वाच्य अर्थ का प्राधान्य स्वीकार्य है और वास्त वकता भी यही है क उस वाच्य अर्थ के माध्यम से लक्ष्य अर्थ तथा व्यंग्य अर्थ की प्राप्ति होती है,

कन्तु काव्य का प्रतीयमान अर्थ तो कुछ भन्न ही प्रकार का होता है और जो क व अपने काव्यनिर्माण में जितना पटु होता है, वह अपने काव्यस्थित शब्द के माध्यम से अपने काव्य में उतनी ही मात्रा में अ धका धक लावण्य को प्रस्तुत कर पाता है-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् । यत्

तत्प्र सद्धावयवातिरिक्त वभाति लावण्य मवाड्नासु ॥

जैसे वक्त की बु द्ध अर्थबोधन के लए पहले उ चत शब्दों की खोज करने में लग जाती है, श्रोता की बु द्ध भी उसी प्रकार अर्थ जानने सेत पहले सुने हुए शब्दों के जाँच परख में लग जाती है-

यथा प्रयोक्त ः प्राग्बु द्धः शब्देष्वेष प्रवर्तते । व्यवसायो ग्रहीतृणामेवं तेष्वेव जायते ॥ २४

कहने का तात्पर्य यह है क शब्द के उच्चारण से पहले वक्ता शब्द से साथ ही अपना बु द्ध योग करता है। कसी इच्छित अर्थ के साथ शब्द का सम्बन्ध और फर उसके उच्चारण की प्रेरणा बु द्ध करती है। अत: श्रोता भी अर्थज्ञान से पूर्व शब्दों के साथ ही अपना बु द्धयोग करता है। शब्द को यथावत् बु द्धगम्य कर लेने के बाद ही श्रोता अपने अभीष्ट अर्थ का बोध करता है या अभीष्ट अर्थ का सम्बन्ध उससे करता है। शब्द ही श्रोता और वक्ता के बीच अर्थ - प्रतिपत्ति का तारतम्य जोड़ते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वश्लेषण से स्पष्ट है क काव्यत्व की प्रतिष्ठा शब्द और अर्थ के समवेत रूप में ही निहित है। यदि शब्द सहृदय पाठक की श्रुति को अनुरञ्जित करता है, तो अर्थ उसके हृदय को रसाह्लाद से चमत्कृत करता है। अर्थाभाव में शब्द उच्चकोटि के आनन्द का अनुभव नहीं करा सकता है। दोनों के मञ्जुल सहयोग से ही काव्य का उन्मेष होता है। वेदादि शास्त्रों में वाणी का जो गुणगान कया गया है, वह उसकी सार्थकता के कारण। वस्तुतः निरर्थक शब्द, शब्द कहलाने के अ धकारी नहीं हैं। जहाँ शब्द होगा, वहाँ अर्थ होगा ही । यदि ऐसा नहीं होता तो काव्य व्यापार क्या लोकव्यवहार भी सर्वथा कुण्ठित रह जाता। इस प्रकार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है। इसमें कसी प्रकार की वप्रतिपत्ति नहीं हो सकती।

सन्दर्भ - सूची

1. आचार्य श्री वामदेव (व्याख्याकार), श्री भर्तृहरिकृत वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड), चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २००७
2. गोपीनाथ पी, भर्तृहरिः शतकत्रयम्, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, २०१०
3. चतुर्वेदी आचार्य पं० सीताराम, का लदास - ग्रन्थावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, २००६
4. जिज्ञासु श्री पं० ब्रह्मदत्त, अष्टाध्यायी - भाष्य- प्रथमावृत्ति, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, २०१०
5. त्रिपाठी डा० श्रीकृष्णम ण (व्याख्याकार), श्रीकान्तिचन्द्रभ ाचार्यसंक लत काव्यदी पका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणासी, २००९
6. त्रिपाठी प्रो० जयशंकरलाल (व्याख्याकार एवं सम्पादक), व्याकरणमहाभाष्यम् (दो भाग), अकादमी, वाराणसी, २००२
7. त्रिवेदी पं० राम गो वन्द (अनुवादक), ऋग्वेद संहिता (सायणाचापर्यकृत भाष्यसहित), चौखम्बा वद्या भवन, वाराणसी, २०११
8. द् ववेदी डा० क पलदेव द् ववेदी, भाषा वज्ञान एवं भाषाशास्त्र, वश्व वद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९४
9. द् ववेदी डा० पारसनाथ द् ववेदी (सम्पादक और व्याख्याकार), भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्रम् (चार भाग), सम्पूर्णा नन्दसंस्कृत वश्व वद्यालय, वाराणसी, १९९२
10. द् ववेदी आचार्य श्रीरहस वहारी (सम्पादक), साहित्य वमर्शः, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वश्व वद्यालय, वाराणसी, २००२ बाली डा० तारकनाथ एवं डा० नगेन्द्र (सम्पादक), भारतीय काव्य सद्धान्त, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वश्व वद्यालय, १९९०
11. मश्र आचार्य रामचन्द्र (व्याख्याकार), हिन्दी काव्या